रूस-उक्रेन युद्ध: क्यों कारगर नहीं होते नागरिक प्रतिरोध?

प्रेम सिंह

24 फरवरी 2022 को रूस के उक्रेन पर हमले के साथ विभिन्न देशों की सरकारों, संयुक्त राष्ट्र समेत सभी वैश्विक संस्थाओं, दूतावासों, मीडिया, विषय-विशेषज्ञों आदि की सक्रियता रूस-उक्रेन युद्ध पर केंद्रित हो गई है। दूसरे महायुद्ध के बाद यूरोपीय नेताओं में सहमति बनी थी कि भविष्य में यूरोप की धरती को युद्धों से मुक्त रखा जाएगा। ऐसा प्राय: हुआ भी, सिवाय सोवियत संघ द्वारा 1968 में चेकोस्लोवाकिया में 'प्राग बसंत' और 1956 में हंगरी में 'क्रांति' को कुचलने के लिए किए गए हमलों के। अब कहा जा रहा है कि रूस-उक्रेन युद्ध के चलते यूरोप के युद्ध की चपेट में आने का खतरा पैदा हो गया है। शायद तभी जर्मनी जैसा देश भी उक्रेन को भारी मात्रा हथियार देने की घोषणा कर चुका है।

रूस-उक्रेन युद्ध के खिलाफ पहले दिन से रूस सहित दुनिया के कई बड़े शहरों में बड़े पैमाने पर स्वत:स्फूर्त नागरिक प्रतिरोध हुए हैं। लेकिन युद्ध के इर्द-गिर्द चलने वाले तेज घटनाक्रमों के बीच युद्ध का विरोध करने वाले नागरिकों की आवाज दब कर रह गई; और युद्ध छठे दिन में प्रवेश कर चुका है। युद्धों के खिलाफ नागरिक प्रतिरोधों की, खास कर यूरोप और अमेरिका में एक लंबी परंपरा मिलती है। यह स्मरणीय है कि अमेरिका के वियतनाम युद्ध में शामिल होने के खिलाफ 60 और 70 के दशकों में अमेरिका में नागरिक प्रतिरोधों की एक लंबी शृंखला चली थी। उसी तरह परमाणु-विरोधी नागरिक आंदोलन की भी एक लंबी परंपरा अमेरिका और यूरोप में मिलती है। युद्ध-विरोधी और परमाणु-विरोधी नागरिक आंदोलनों के समानांतर एक विश्वव्यापी शांति आंदोलन की मौजूदगी भी रही है। इन आंदोलनों में दुनिया की कुछ धार्मिक विभूतियां भी युद्ध और हिंसा के बरक्स शांति की अपील करती रही हैं। लेकिन युद्ध और उससे जुड़ी हिंसा और तबाही के खिलाफ होने वाले नागरिक प्रतिरोध न पहले कारगर रहे हैं, न उनके इस बार कारगर होने की कोई उम्मीद नजर आती है। रूस-उक्रेन युद्ध से उत्पन्न संकट का जो भी समाधान निकलेगा, वह महत्वपूर्ण देशों के नेताओं और वैश्विक संस्थाओं के अधिकारियों के स्तर पर निकलेगा। नागरिक समाज और उसके सरोकारों की भूमिका उस समाधान में नहीं होगी।

कहने की जरूरत नहीं कि रूस-उक्रेन युद्ध का देर-सबेर होने वाला समाधान तात्कालिक व अस्थायी समाधान होगा। रूस के राष्ट्रपति ब्लादिमीर पुतिन ने अमेरिका, यूरोपियन यूनियन और नाटो के आर्थिक प्रतिबंधों एवं बयानों से कुपित होकर रूस की परमाणु शक्ति को अलर्ट रहने के आदेश दिए हैं। भले ही यह पुतिन की 'भाषणबाजी' हो, रूस द्वारा युद्ध में क्लस्टर बम और वैक्युम बम इस्तेमाल करने की खबरें आ रही हैं। इससे यह वास्तविकता एक बार फिर सामने आती है कि भविष्य में परमाणु हथियारों के इस्तेमाल से इनकार नहीं किया जा सकता। अगर रूस-उक्रेन युद्ध फिलहाल पूरे यूरोप के लिए खतरा नहीं भी बनता है, इसके पर्याप्त संकेत हैं कि यूरोप का भविष्य वैसे खतरे से खाली नहीं है। जिस तरह से दुनिया में हथियार उद्योग फल-फूल रहा है, 'भविष्य के हथियार' (फ्यूचर वेपन्स) ईजाद किए जा रहे हैं, ज्यादातर देशों में नवीनतम हथियार खरीदने की होड़ लगी है, उग्र राष्ट्रवाद की लहर पर सवार तानाशाही प्रवृत्ति वाले नेताओं की संख्या और वर्चस्व में वृद्धि हो रही है - रूस-उक्रेन युद्ध की समाप्ति के बावजूद विश्व में युद्धों और गृह-युद्धों का सिलसिला थमने वाला नहीं है।

यह अकारण नहीं है कि युद्ध और हिंसा के विरुद्ध बड़े स्तर पर होने वाले नागरिक प्रतिरोध आंदोलनों के बावजूद युद्ध और हिंसा का प्रसार बढ़ता जाता है। डॉक्टर राममनोहर लोहिया ने 50 के दशक में कहा था कि बीसवीं शताब्दी के अंत तक गांधी और परमाणु बम में से एक की विजय हो चुकी होगी। यहां गांधी अहिंसक सभ्यता और परमाणु बम हिंसक सभ्यता के प्रतीक हैं। दरअसल, दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद से ही हिंसक सभ्यता की जीत की दिशा जैसे तय हो गई थी। गांधी और विश्व के कई अन्य नेताओं एवं विद्वानों द्वारा प्रस्तावित अहिंसक सभ्यता के विचार को दुनिया के मंच पर कभी मौका ही नहीं दिया गया। लिहाजा, सवाल यह है कि क्या युद्ध और हिंसा का विरोधी नागरिक समाज आधुनिक हिंसक सभ्यता की जगह अहिंसक सभ्यता को मौका देना चाहता है? क्या वह इस समस्या पर समग्रता में गंभीरता से विचार करना चाहता है?

यह नहीं कहा जा सकता कि नागरिक समाज इस सच्चाई से अनभिज्ञ है कि आधुनिक औद्योगिक/उत्तर-औद्योगिक सभ्यता हथियार और बाजार के दो मजबूत पहियों पर चलती है; कि इस सभ्यता का कर्णधार नेतृत्व उसी की बदौलत सत्ता में चुना जाता है; कि उसके द्वारा चुने गए नेतृत्व द्वारा ही वैश्विक संस्थाओं के वे प्रतिनिधि प्रति-नियुक्त किए जाते हैं जो विश्व-व्यवस्था को चलाते हैं; कि उपनिवेशवादी दौर से अभी तक के सारे युद्ध प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जे के लिए हुए हैं; कि यूरोप/अमेरिका/रूस/मध्य-पूर्व में उपलब्ध भोगवादी समृद्धि विश्व की विशाल आबादी का हिस्सा मार कर हासिल की गई है; कि अविकसित और विकासशील देशों में निर्मित समृद्धि के टापू वहां के शासक-वर्ग की बेईमानी का नतीजा हैं; कि दूसरे विश्व-युद्ध के बाद अमेरिका और सोवियत संघ के साझे चक्रवर्तित्व में जो नई विश्व-व्यवस्था बनी उसी के परिणामस्वरूप दुनिया में नागरिकों का नहीं, निगमों का राज कायम हो चुका है; कि दुनिया का राजनीतिक नेतृत्व इन निगमों का ताबेदार है; और भाषा, शिक्षा, कला, संस्कृति जैसे संजीदा विषय भी हिंसक सभ्यता की सेवा में नियोजित कर दिए हैं।

दरअसल, नागरिक समाज हिंसक सभ्यता की गोद में बैठ कर युद्ध-विरोध और शांति की अपील करता है। वह अहिंसक सभ्यता की शुरुआत और आगे विस्तार के लिए हिंसक सभ्यता के आकर्षण को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता। इसलिए पद-पुरस्कारों की एवज में जल्दी ही सिस्टम में को-आप्ट हो जाता है। युद्ध और हिंसा का सड़कों पर निकल कर विरोध करने वाले नागरिक समाज को सबसे पहले अपने को हिंसक सभ्यता के मोहपाश से मुक्त करना होगा। उसे यह स्पष्ट संदेश देना होगा कि केवल यूरोप/अमेरिका/रूस को ही नहीं, पूरी दुनिया को युद्ध से मुक्त करना है। इस संदेश के साथ जो नेतृत्व उभर कर आएगा, वह अहिंसक सभ्यता के निर्माण की दिशा में समुचित काम कर पाएगा। नागरिक समाज को यह सपना देखना ही चाहिए कि मानवता की आंखों में युद्ध से होने वाली तबाही के आंसू नहीं, शांति से हासिल होने वाली चमक दिखाई दे!

(*समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के फ़ेलो हैं*)